वीर संवत् २४९१, आसोज शुक्ल ०४, मंगलवार
दिनांक-२८-०९-१९६५, गाथा-११-१२, प्रवचन-९ (१०)

ग्यारहवीं गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश, पहला भाग (अधिकार)।

यहाँ यह चलता है श्रेणिक राजा इत्यादि। भरत चक्रवर्ती से शुरु होकर भगवानों को, मुनियों को इन श्रोताओं ने यह प्रश्न किया कि भगवान! यह शुद्धात्मा यह क्या चीज़ है? शुद्धात्मा जिसे कहते हैं, प्रभु! वह क्या है? वे **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** भगवान शुद्धात्मस्वरूप, कषाय अग्नि के अन्दर, जैसे बर्फ का शीतल स्वभाव है, अविकारी वीतराग आनन्द और शान्ति, ऐसा भरपूर भगवान शुद्धात्मा कौन है? भरत (आदि) चक्रवर्तियों ने और श्रेणिक राजा ने ऐसा प्रश्न भगवान से किया।

उसके उत्तर में भगवान कहते हैं, **उसके उत्तर में भगवन् ने यही कहा कि आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** यह स्वयं न्याय से लिया है। क्योंकि आत्मा उपादेय है न? ऐसा अन्त में कहेंगे। अर्थात् यह भगवान के उत्तर में, मुनियों की आवाज में—प्ररूपणा में यह आया कि हे भाई! शुद्धात्मा ही (सार है)। शुद्धात्मा अर्थात् **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** देखो! भले कषाय हो, शरीर आदि हो, परन्तु जिस चीज़ में आनन्द और शान्ति पड़ी है, ऐसा भगवान आत्मा, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान होने पर पुण्य-पाप आदि उसमें नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है, परन्तु वह सब आत्मज्ञान हुआ कहलाता है। समझ में आया? आत्मज्ञान। भगवान के चारों अनुयोगों में... देखो! आगम के प्रश्नोत्तर में यह सब आया था। उसमें यह भी आया था, उसमें से इन्होंने यह प्रश्न किया। भगवान **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** शिष्य। भगवान उसका उत्तर देते थे कि **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।**

भरतादि बड़े-बड़े श्रोताओं में से भरत चक्रवर्ती ने श्री ऋषभदेव भगवान से पूछा, सगर चक्रवर्ती ने श्री अजितनाथ से, पूछा रामचन्द्र बलभद्र ने देशभूषण-कुलभूषण केवली से तथा सकलभूषण केवली से,... पूछा। **पाण्डवों ने श्री नेमिनाथ भगवान से...** पूछा। **और राजा श्रेणिक ने श्री महावीरस्वामी से पूछा।** लो! यह प्रश्न किया, प्रभु! मैं कौन? यह शुद्धात्मा कौन है? समझ में आया?

अब, वे श्रोता कैसे हैं कि जिन्होंने ऐसा प्रश्न किया? वे श्रोता कैसे हैं? **कैसे हैं ये श्रोता जिनको निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है,...** जिन्हें यह भगवान आत्मा, पूर्ण शान्त आनन्दरस स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति ऐसा निश्चय रत्नत्रय जिसे प्रिय है। समझ में आया? भगवान आत्मा, देखो! निश्चयरत्नत्रय प्रिय है अर्थात् निश्चयरत्नत्रय है। समझ में आया? पूरा शीतल अविकारी शान्तस्वभाव का पिण्ड प्रभु की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ आनन्द, (यह) कहेंगे, उसे निश्चयरत्नत्रय की प्रियता है। स्वभाव शुद्ध पूर्ण, उसका आनन्द, उसका अनुभव हुआ है। ऐसे निश्चयरत्नत्रय की प्रियता है और... देखो! विशेष (कहते हैं)।

और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है,... और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग भी व्यवहार से प्रिय है। निश्चय से यह प्रिय है और व्यवहार से यह प्रिय है। समझ में आया? प्रिय ही है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, जिसमें कषाय अग्नि को शान्त करने का, नाश करने का स्वभाव है, ऐसा भगवान केवलज्ञानमय कहेंगे अन्दर। '**णाणमउ**' बारह (गाथा में) कहेंगे। जो अकेला ज्ञानमय प्रभु है, अर्थात् कि उसमें विकार नहीं, अर्थात् ज्ञानमय है, आनन्दमय है, शान्तमय है, स्वच्छतामय है, यह सब इसमें आ जाता है। ऐसा जो भगवान आत्मा उसकी उसे भावना निश्चय से प्रिय है। व्यवहार से ऐसे विकल्प भी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के, ज्ञान के व्यवहार और व्यवहार दया-दान के, भक्ति के परिणाम भी होते हैं। तो उसे व्यवहार से प्रिय है, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों... दोनों। एकाग्रता है न? राग में इतनी अस्थिरता है न? यहाँ वीतराग की स्थिरता है। निश्चयरत्नत्रय में वीतरागस्वरूप आत्मा की सन्मुखता की एकाग्रता है। राग में जरा परसन्मुख का विकल्प है, इतना अन्दर परिणमन है, इसलिए उसे इस अपेक्षा से एकाग्रता का आरोप दिया है।

परमात्मा की भावना से उत्पन्न... ओहो! भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु की अन्तर की एकाग्रता द्वारा **उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप अमृतरस के प्यासे हैं,...** अमृतरस के प्यासे

हैं, तृषा लगी है। आहाहा! समझ में आया? जैसे तृषा लगी हो न, पानी को कैसे माँगे? उसमें मौसम्बी का पानी और बर्फ का पानी आवे तो ऐसे गटक-गटक पीता है। ऐसा यह कहते हैं, प्रभु! ये श्रोता ऐसे हैं। आहाहा! जिन्हें वीतराग परमानन्द अमृतरस, भगवान आत्मा वीतरागरस से भरपूर तत्त्व प्रभु, ऐसे आत्मा के अमृत के रस के पिपासु हैं। समझ में आया? यह रागरस और तृष्णा और भोगरस के पिपासु नहीं। आहाहा! छह खण्ड के धनी, छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखाई दे। नहीं, नहीं, यह नहीं, यह नहीं। यह भोग के रस के पिपासु नहीं; यह आत्मा के अविकारी आनन्द रस के, अमृत के पिपासु हैं। कहो, समझ में आया?

और वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर उत्पन्न हुआ... रागरहित आत्मा की शुद्धता की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और लीनता द्वारा **उत्पन्न हुआ जो सुखरूपी अमृत...** यह वीतराग निर्विकल्प शान्ति से उत्पन्न हुआ **सुखरूपी अमृत उससे विपरीत...** मनुष्य, नारकी, देव, पशु। उनके दुःख **उनसे भयभीत हैं।** आहाहा! समझ में आया?

जीवित जानवर को अग्नि की भट्टी में डाले। राजकुमार... ऐसे राजकुमार हो पच्चीस वर्ष का युवक, उसे ऐसे जमशेदपुर की भट्ठी में जीवित, लकड़ी जीवित डाले ऐसे डाले, और उस अग्नि का जिसे अन्दर भय है। आहाहा! इसी प्रकार चार गति और कषाय की आकुलता का जिसे भय है। अरे! यह द्रव्य यहाँ से छूटकर जायेगा कहाँ? यह वस्तु आकुलता है, उसमें और ऐसे अवतार अनन्त किये। ऐसी आकुलता के दुःख से जिसे अन्तर में भय लगा है। जैसे अग्नि से ऐसे डरता है, उसी प्रकार ये आकुलता से डरे हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह विकल्प के जाल उठे, शुभ-अशुभ का जाल, ऐसा जो विकल्प का दुःख, वह चार गति के दुःख उसमें हैं। स्वर्ग में हो तो उस विकल्प के जाल में दुःख है। वह उससे भयभीत है। अरे! यह आत्मा, ऐसे आकुलता के दुःख अनन्त बार भोगे। अब उससे रहित मेरी चीज़ क्या है? उसे अन्तर पिपासा अमृत को पीने के लिये (और) दुःख से, आकुलता से (छूटने के लिये प्रश्न करता है)। दुःख अर्थात् प्रतिकूलता, ऐसा नहीं है। दुःख अर्थात् कि कषाय का विकारी भाव, उससे भय पाता है। यह कषाय

आत्मा की शान्ति का लुटेरा है। समझ में आया? देखो! छह खण्ड के राज में दिखता है। यह है कहाँ? कहते हैं। यह चार गति के दुःख के दुःख से डरे हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सामग्रियाँ ऐसी सब। शरीर, स्त्रियाँ, कुटुम्ब-परिवार के ओर की जो कषाय की ज्वाला सुलगती है, उससे भयभीत हैं। समझ में आया? डर गये हैं। तीर्थंकर जैसे भी चार गति के दुःख की आकुलता से डरे। उससे जो न डरे, वह तो महा सुभट कहलाता है। चौरासी के अवतार, अरे! कहाँ इसे सुख? कहीं इसे शान्ति की गन्ध नहीं मिलती। चारों ओर चौरासी के अवतार में दुःख, दुःख और दुःख है। उससे जो भयभीत है। समझ में आया?

जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा,... ऐसे जीवों ने प्रश्न पूछा, उसका उत्तर भगवान ने दिया, ऐसी दो भूमिका स्थापित की। आहाहा! एक ऐसे शौक के खातिर, सुनने के खातिर, समझकर कुछ ज्ञान करके दूसरों को कहना और अपने को कुछ आता है, इस खातिर वे नहीं पूछते थे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पूछने की पद्धति में भी अन्तर होता है। पूछे तो अपने को कुछ आता है, ऐसा दूसरे को बतावे, या पूछे तो कुछ उसका जवाब दूसरा मिले तो उसे धारणा होती है। दूसरे की अपेक्षा विशेषपना है, वह नहीं... वह नहीं। प्रभु! इस आत्मा को आकुलता से छूटने का (भाव है, इसलिए पूछता है कि) आत्मा—भगवान आत्मा कौन है? कहते हैं। समझ में आया?

दुनिया के पास उसे सरल मार्ग नहीं लेना कि यह अच्छा है, हों! पूछनेवाला है, प्रश्न पूछता है, धर्म की भारी जिज्ञासावाला लगता है। समझ में आया? और वाँचता है, पढ़ता है, कितना प्रयत्न करता है! ऐसे दुनिया को दिखाने के लिये नहीं। दुःख से उकता गया है, भय है। शरीर से नहीं (उकताया), हों! यहाँ। गति का भटकना, इस शान्तरस में से निकलकर इन विकल्पों में आना, वही दुःख है। समझ में आया? ऐसे दुःख से भयभीत हुए हैं। आहाहा!

ऐसे देखो तो छह खण्ड के राज, इन्द्राणी जैसी तो जहाँ घर में अप्सरायें और स्त्रियाँ। ऐसे मणिरत्न के महल (होते हैं)। अग्नि के भट्टी में जैसे बर्फ का शीतल पाँच

मण का गोला पड़ा हो अन्दर, उसी प्रकार यह कषाय की-विकल्प की अग्नि के पीछे भगवान शान्तरस है। उसमें जाने के लिये यह आकुलता से भयभीत है। आहाहा! समझ में आया?

विशाल काला नाग देखे और जैसे भागे, सुने वहाँ भागे। ऐसे देखे, ऐसा करके। समझ में आया? वे कहते हैं नहीं थे कल? बाबूभाई कहते थे। वह ... नाग बैठा था दरवाजे पर। यह वह टोटा है न? टोटा नहीं? यह कुँआ के टोटा भरे हैं न उसमें? मकान नहीं उसे? .... उसे एक रखते हैं न? एक व्यक्ति वह है और एक रात्रि में है। वह कहे, भाई आये थे न.... वह कहे, ऐसे शैय्या में अंधेरा था, वह यह बड़ा नाग बैठा हुआ देखा। मैं तो शैय्या (बिस्तर) लेकर भागा। ऐसा जहाँ सुना वहाँ। बत्ती (प्रकाश) की वहाँ ऐसे बैठा हुआ। जंगल है न वहाँ तो एकदम। जंगल में तो ऐसे बैठा था। भागे अन्दर। शैय्या-बैय्या गोटो लेकर भागा। आहाहा!

इसी प्रकार पुण्य-पाप के विकारी आकुलता के दुःख सर्प जैसे हैं। धर्मात्मा उसके दुःख से भागे हैं। आहाहा! समझ में आया? वह रस लेने खड़े नहीं रहे। आहाहा! समझ में आया? यह पूर्व के पुण्य के कारण सामग्री मिली हो और पाप के कारण प्रतिकूलता (मिली हो), अन्तर में दोनों की आकुलता के दुःख से भगे हैं। कहो, समझ में आया? जिसमें आकुलता में जिसे कहीं रस रहा नहीं और रस रहा है, ऐसा आत्मा, उसकी भावना प्रिय है, ऐसे श्रोता ने प्रश्न किया और भगवान ने उत्तर दिया है। आहाहा! कैसी भूमिका स्थापित करते हैं? समझ में आया? आहाहा!

जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा,... ऐसे भव्य जीवों ने ऐसा भगवान से प्रश्न किया, नाथ! पूर्ण केवलज्ञानी परमात्मा है, सन्त आदि या मुनि आदि हों, उनसे पूछे, प्रभु! यह परमात्मा मेरा निज स्वरूप भगवान अन्दर, वह क्या है? विशेष प्रगट समझने के लिये, विशेष उग्रता—पुरुषार्थ के लिये, यह प्रश्न ऐसे श्रोताओं ने पूछे थे। आहाहा! अपने आत्मा में विशेष महिमा आकर स्थिर होने के लिये यह प्रश्न थे। समझ में आया? **और भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा,...** आगे कहेंगे न? यह कहना है इसलिए।

भगवान ने आत्मा के तीन प्रकार के स्वरूप कहे, जब श्रोताओं ने ऐसा पूछा। ओहोहो! वह सभा, वे चक्रवर्ती, रानियाँ लेकर आया हो, वासुदेव, बलदेव भी हजारों रानियाँ लेकर आये हों, ऐसे बड़े आकाश के स्तम्भ जैसे पुण्यवाले दिखाई दें। यह कहते हैं कि उसे आकुलता के भाव से भयभीत हैं, हों! अन्दर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस प्रभु! उसके हम पिपासु हैं। यह कहते नहीं, यहाँ तो आचार्य कहते हैं। वह इसका पिपासु है, ऐसा हम कहते हैं। ऐसे जीवों ने भगवान से पूछा, तो भगवान ने आत्मा के तीन प्रकार की बात की। समझ में आया?

भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा, वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। देखो! सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी की पर्याय में ही यह तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए, उसमें आत्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा कैसा है, उसका ज्ञान भगवान के ज्ञान में था। भगवान ने इस आत्मा के तीन प्रकार का स्वरूप कहा। उसके अनुसार मैं भी तुझसे कहूँगा, कहते हैं। मेरे कल्पना की, घर की बात नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर, उन्होंने जो तीन काल, तीन लोक जाने, उसमें आत्मा की तीन अवस्थायें और आत्मद्रव्य, यह जाना और उन्होंने कहा ऐसी जिन—अनुसार, वाणी के अनुसार मैं तुझसे कहूँगा। समझ में आया?

अच्छा एक लड़का मर गया हो न, फिर जिसे नहीं कहते कि भाई! शोक का मुख है। ऐसा नहीं कहते? उसी प्रकार यह वैराग्य के जिसके मुख हैं, ऐसे भगवान को प्रश्न करते हैं। आहाहा! समझ में आया? बीस वर्ष का लड़का मर गया हो, दो वर्ष का विवाहित छोड़कर और इकलौता ही हो, अब आशा भी नयी न हो और उसे कोई लड़का भी न हो। वह शोक का मुख हो। शोक का अर्थात्? शोक... शोक... शोक... शोक...

यहाँ कहते हैं कि आकुलता के भाव में दुःख लगा है न! समझ में आया? जिसे वैराग्य मुख में-आत्मा में छा गया हो। उसको शोक का मुख है, इसका वैराग्य से (भरा हुआ) है। प्रभु! आहाहा! हमारे आत्मा का निज स्वरूप, प्रभु कैसा है? तब कहते हैं, भाई! भगवान ने कहा, तत्प्रमाण मैं तुझे कहूँगा।

वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। सारांश यह हुआ कि तीन प्रकार आत्मा के स्वरूपों से शुद्धात्मस्वरूप जो निज परमात्मा वही ग्रहण करनेयोग्य है। उसमें टीका में अन्तिम शब्द है न? अन्तरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा कहूँगा, परन्तु उसमें यह आत्मा जो निज स्वरूप है, वही अन्तर्दृष्टि करके स्थिर होनेयोग्य, वही उपादेय और आदरणीय है। समझ में आया? **जो मोक्ष का मूलकारण रत्नत्रय कहा है,...** वह भेदाभेद रत्नत्रय की भावना प्रिय है, ऐसा कहा न? तब भगवान ने भी भेदाभेद रत्नत्रय कहा है न? इसलिए उसे प्रिय है। भगवान ने कहा, वह मैं भी कहता हूँ—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रश्नकार के भेदाभेद रत्नत्रय की प्रियता जो वर्णन की, तब उसे भी भगवान ने, सन्तों ने भेदाभेद रत्नत्रय कहा था। तो कहते हैं, **वह मैंने निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है,...** मैं भी इस प्रकार से कहता हूँ। समझ में आया?

मैंने... 'ब्रह्मदेव' कहते हैं, यह 'योगीन्द्रदेव' आचार्य कहते हैं। निश्चय, व्यवहार। क्योंकि श्रोता को निश्चय और व्यवहार, अभेदभेद रत्नत्रय प्रिय है। उसने सुना और कहाँ से उसने यह सुना हुआ जाना? सन्तों ने—केवलियों ने कहा हुआ। तो मैं भी उस प्रकार से तुझे कहता हूँ, ऐसा कहते हैं। **निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है, उसमें अपने स्वरूप का श्रद्धान...** भगवान आत्मा एकदम ज्ञान और आनन्द का स्वरूप जिसका पूर्ण है, उसकी जिसे अन्तर श्रद्धा, स्व शुद्ध स्वरूप की अन्तर श्रद्धा, **स्वरूप का ज्ञान...** स्व-रूप। अपना ज्ञानमय चिदानन्द प्रभु का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, स्वरूप का ज्ञान, निज परमात्मा का ज्ञान, यह निश्चय। यह निश्चय ज्ञान, वह अभेद ज्ञान। पहले स्वरूप श्रद्धा और निश्चय समकित या अभेद श्रद्धान **और स्वरूप का ही आचरण...** भगवान आत्मा अपनी दृष्टि, ज्ञान को करके ऐसे शुद्ध स्वरूप में ऊपर अन्तर रमे। ऊपर अर्थात् क्या? कि पर्याय से द्रव्य में रमे। वस्तु जो पूर्ण स्वभाव का पिण्ड शान्तरस का गर्भ, अकेला शान्त बर्फ जैसे शीतल (होता है),उसी प्रकार यह शान्तरस का पिण्ड, इसके ऊपर रमे, इसका नाम चारित्र और इसका नाम निश्चय आचरण कहा जाता है अथवा उसे अभेदचारित्र कहा जाता है। क्योंकि वह पर्याय द्रव्य के साथ एक होती है। समझ में आया? आहाहा! अरे! **यह जो निश्चयरत्नत्रय है, इसी का दूसरा नाम अभेद भी है,...** ऊपर अभेद कहा था न?

भेदाभेद रत्नत्रय प्रिय है। इसलिए कहा कि, अभेद और भेद प्रिय है। इसका अर्थ ही अभेद अर्थात् निश्चय, भेद अर्थात् व्यवहार।

और देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा,... सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा। योगीन्द्रदेव कहते हैं अथवा जिस-जिस प्रश्नकार के उत्तर देनेवाले सन्त कहते हैं, कि भगवान आत्मा निज स्वरूप से पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर की श्रद्धा, अन्तर्मुख का ज्ञान और अन्तर्मुख का आचरण, उसे सच्चा रत्नत्रय जो कि सच्चे रत्नत्रय के कीमत में मोक्ष मिलता है। इस सच्चे रत्नत्रय की कीमत देने से मोक्ष का मणि-माणेक मिलता है। उसे निश्चय कहते हैं, उसे अभेद कहते हैं, उसे सच्चा रत्नत्रय कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसके साथ देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का एक विकल्प होता है। सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा, सच्चे पूर्ण स्वरूप को साधनेवाले सन्त और अहिंसा धर्म, शास्त्र की श्रद्धा, उसका जो शुभ विकल्प, वह व्यवहार श्रद्धा है, भेदवाली श्रद्धा है, वह उपचारिक श्रद्धा है।

नव तत्त्वों की श्रद्धा... जीव-अजीव आदि बराबर (जाने हैं)। जीव अनन्त हैं, अजीव अनन्त हैं, पुण्य परिणाम है, पाप परिणाम है, ऐसे नौ के नौ भिन्न-भिन्न, उनके कार्य और भिन्न-भिन्न जिनका स्वरूप है, इस प्रकार से नौ की श्रद्धा करना, वह विकल्पवाली श्रद्धा है। वह राग श्रद्धा, रागरूप श्रद्धा, वह व्यवहार श्रद्धा कही जाती है।

आगम का ज्ञान और शास्त्र का ज्ञान। स्व का ज्ञान वह निश्चयज्ञान। आगमज्ञान, वह व्यवहार का ऐसा विकल्प होता है। शास्त्र के पढ़ने का ज्ञान वह विकल्प है। जिसे निश्चय हो, उसे ऐसा व्यवहार होता है। ऐसा आगम का ज्ञान, बराबर आगम का जैसा कहना है, नव तत्त्व, छह द्रव्य आदि, उसका उसे ज्ञान (होता है)। वह व्यवहार ज्ञान कहने में आता है। जो विकल्प है, जो भेद है, जो उपचार है अथवा खोटा रत्न है। उपचार कहो या खोटा कहो, उसमें क्या है? समझ में आया?

खोटा कीमती नहीं होता। खोटे को कीमत का आरोप दे, वह निश्चय के साथ में है इसलिए। समझ में आया? **तथा संयमभाव...** पाँच इन्द्रियों के दमन का शुभ विकल्प। समझ में आया? अथवा छह काय जीव को न मारना, ऐसा विकल्प, ऐसा शुभ संयम व्यवहार होता है। यह व्यवहार आचरण कहो, भेदरूपी आचरण कहो, निमित्तरूप से आचरण कहो या उपचार आचरण कहो। **ये व्यवहाररत्नत्रय हैं,...** है,

वापस ऐसा सिद्ध करना है न? क्योंकि उसको कहा था न भेदाभेद रत्नत्रय की भावना प्रिय है। तब है, वह प्रिय है न? समझ में आया? भगवान ने ऐसा कहा था, आचार्य कहते हैं, हम भी ऐसा ही कहते हैं। **इसी का नाम भेदरत्नत्रय है।** विकल्परूप, रागरूप, उपचाररूप भेदरत्नत्रय है, जिसका फल वास्तव में तो पुण्य है परन्तु निश्चयरत्नत्रय का फल मोक्ष है, ऐसा उसका आरोप देकर कहते हैं तो उसका फल मोक्ष है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया या नहीं?

आत्मा वस्तु का स्वभाव, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह एक ही मोक्ष का सच्चा मार्ग है। परन्तु साथ में ऐसा व्यवहार है, वह वास्तव में (मोक्षमार्ग) नहीं है। परन्तु ऐसे मोक्षमार्ग को साथ ऐसा विकल्प अनुकूल व्यवहार से गिनकर वह भी मोक्ष का कारण है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। है बन्ध का कारण। उसे व्यवहारनय कहता है कि वह व्यवहार, मोक्ष का कारण है। ऐसे दो प्रकार के भाव, धर्म आराधक जीव को होते हैं। समझ में आया?

विकल्प है या नहीं? यहाँ निर्विकल्प के साथ है तो आरोप देते हैं। आरोप करके कहते हैं न? निश्चय सच्चा है, वह साथ में खोटा है। परन्तु सच्चे के निश्चय की अपेक्षा से वह भी व्यवहार से सच्चा है, ऐसा आरोप किया जाता है। कठिन पड़े ऐसा है। क्या है?

यहाँ तो दोनों को रत्नत्रय कहना है न? यहाँ (जिसे) निश्चयरत्नत्रय है, इसलिए उसे (राग को) व्यवहाररत्नत्रय कहा। निमित्तरूप कहो, भेदरूप कहो, व्यवहाररूप कहो। यहाँ यह है, इसका आरोप करके उसे भी रत्नत्रय कहा और दोनों मोक्षमार्ग है, ऐसा कहने में आया। दो का कथन किया, उसमें दो आये। वास्तविक तो एक ही मोक्षमार्ग है। यह आज थोड़ा व्यवहार को स्थान मिला (ऐसा कहते हैं)।

मुमुक्षु : आज निश्चित करने के लिये स्थान मिला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो दोनों साथ में वर्णन करना है, तब उसका स्वरूप क्या कहे? इसे रत्नत्रय कहा। यहाँ सच्चा रत्नत्रय है तो विकल्प को व्यवहार से रत्नत्रय कहा। यह निश्चय तो वह व्यवहार, यह सच्चा तो वह उपचार, यह वास्तविक तो वह

खोटा, यह शुद्ध उपादान तो वह निमित्त। कहो, समझ में आया? आहाहा! निश्चय की अपेक्षा से खोटा, व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार सच्चा है। है सही न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपचार का अर्थ ही खोटा है। बिल्ली को सिंह कहना। उसमें क्या कि यह सिंह रहा। चित्राम में लिखा होता है न सिंह। यह सिंह। है सिंह? खोटा सिंह है। उपचार से कहने में आता है।

भेदरत्नत्रय तो साधन हैं... व्यवहार से। यह व्यवहार से रत्नत्रय, भेदरत्नत्रय व्यवहार से साधन है। क्योंकि उसका विषय पर है। क्या कहा? देव-गुरु लिये न? देखो न! देव-गुरु महाधर्म, नव तत्त्व और आगम का ज्ञान और संयम इन्द्रिय का दमन आदि परलक्ष्य से पर को ऐसे न मारना आदि, ऐसा जो व्यवहाररत्नत्रय है, वह राग है, उसका विषय पर है। निश्चयरत्नत्रय है, वह निर्विकार है, उसका विषय आत्मा है। आहाहा!

वह तो इस निश्चय की अपेक्षा से खोटा। खोटे की अपेक्षा से खोटा सच्चा है। वस्तु नहीं? वस्तु नहीं? खोटा रुपया नहीं? खोटा रुपया है या नहीं? परन्तु रुपया कहलाये न उसे? क्या कहलाये? खोटा रुपया, परन्तु रुपया कहलाये न? ऐसा।

मुमुक्षु : साधन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा व्यवहार से साधन कहा।

मुमुक्षु : तो खोटे की व्याख्या करना आवे तो सच्चा आया कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्यार्थनय से, व्यवहारनय से उसे साधन कहा। असत्यार्थनय से, व्यवहारनय से, झूठे नय से उसे साधन कहा। कहो, समझ में आया?

और अभेदरत्नत्रय साध्य हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... अरे! विश्राम का स्थान जिसने कभी देखा नहीं, जाना नहीं, जाने हुए का अनुभव करने का प्रयत्न किया नहीं। रुचा नहीं... रुचा नहीं। जहाँ आगे स्थिर होने से शान्ति मिले और उस शान्ति का महाधाम सत्ता आसन लगाने का (स्थान), ऐसी चीज़ क्या है, उसकी इसने अनन्त काल में कभी प्रीति भी की नहीं। समझ में आया?

गाथा - १२

अथ त्रिविधात्मानं ज्ञात्वा बहिरात्मानं विहाय स्वसंवेदनज्ञानेन परं परमात्मानं भावयत्वमिति प्रतिपादयति –

१२) अप्पा ति-विहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ।
मुणि सण्णाणें णाणमउ जो परमप्प-सहाउ।।१२।।

आत्मानं त्रिविधं मत्वा लघु मूढं मुञ्च भावम्।
मन्यस्व स्वज्ञानेन ज्ञानमयं यः परमात्मस्वभावः।।१२।।

अप्पा तिविहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ हे प्रभाकरभट्ट आत्मानं त्रिविधं मत्वा लघु शीघ्रं मूढं बहिरात्मस्वरूपं भावं परिणामं मुञ्च। मुणि सण्णाणें णाणमउ जो परमप्पसहाउ पश्चात् त्रिविधात्मपरिज्ञानानन्तरं मन्यस्व जानीहि। केन करणभूतेन। अन्तरात्मलक्षणवीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन। कं जानीहि। यं परात्मस्वभावम्। किंविशिष्टम्। ज्ञानमयं केवलज्ञानेन निर्वृत्तमिति। अत्र योऽसौ स्वसंवेदनज्ञानेन परमात्मा ज्ञातः स एवोपादेय इति भावार्थः। स्वसंवेदनज्ञाने वीतरागविशेषणं किमर्थमिति पूर्वपक्षः, परिहारमाह-विषयानुभवरूप-स्वसंवेदनज्ञानं सरागमपि दृश्यते तन्निषेधार्थमित्यभिप्रायः।।१२।।

आगे तीन प्रकार आत्मा को जानकर बहिरात्मपना छोड़ स्वसंवेदन ज्ञानकर तू परमात्मा का ध्यान कर, इसे कहते हैं –

अब त्रिविध आतम जान तुम बहिरात्मा को छोड़ दो।
स्वज्ञान से बस ज्ञानमय परमात्मता को मान लो।।१२।।

अन्वयार्थ :– [आत्मानं त्रिविधं मत्वा] हे प्रभाकरभट्ट, तू आत्मा को तीन प्रकार का जानकर [मूढं भावम्] बहिरात्म स्वरूप भाव को [लघु] शीघ्र ही [मुञ्च] छोड़, और [यः] जो [परमात्मस्वभावः] परमात्मा का स्वभाव है, उसे [स्वज्ञानेन] स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ [मन्यस्व] जान। वह स्वभाव [ज्ञाननयः] केवलज्ञानकर परिपूर्ण है।

भावार्थ :– जो वीतराग स्वसंवेदनकर परमात्मा जाना था, वही ध्यान करनेयोग्य है। यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया था, जो स्वसंवेदन अर्थात् अपनेकर अपने को अनुभवना इसमें वीतराग विशेषण क्यों कहा? क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह तो रागरहित

होवेगा ही। इसका समाधान श्रीगुरु ने किया – कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित है, इसलिये निजरस आस्वाद नहीं है, और वीतरागदशा में स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है, आकुलता रहित होता है। तथा स्वसंवेदनज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ के भी होता है, वहाँ पर सराग देखने में आता है, इसलिये रागसहित अवस्था के निषेध के लिये वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान ऐसा कहा है। रागभाव है, वह कषायरूप है, इस कारण जबतक मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धीकषाय है, तबतक तो बहिरात्मा है, उसके तो स्वसंवेदन ज्ञान अर्थात् सम्यक्ज्ञान सर्वथा ही नहीं है, व्रत और चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी के अभाव होने से सम्यग्ज्ञान तो हो गया, परन्तु कषाय की तीन चौकड़ी बाकी रहने से द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं होता, और श्रावक के पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी का अभाव है, इसलिये रागभाव कुछ कम हुआ, वीतरागभाव बढ़ गया, इस कारण स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ, परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ। मुनि के तीन चौकड़ी का अभाव है, इसलिये रागभाव तो निर्बल हो गया, तथा वीतरागभाव प्रबल हुआ, वहाँ पर स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ, परन्तु चौथी चौकड़ी बाकी है, इसलिये छट्ठे गुणस्थानवाले मुनिराज सरागसंयमी हैं। वीतरागसंयमी के जैसा प्रकाश नहीं है। सातवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी मन्द हो जाती है, वहाँ पर आहार–विहार क्रिया नहीं होती, ध्यान में आरूढ़ रहते हैं, सातवें से छठे गुणस्थान में आवें, तब वहाँ पर आहारादि क्रिया है, इसी प्रकार छट्ठा–सातवाँ करते रहते हैं, वहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल है। आठवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी अत्यन्त मन्द हो जाती है, वहाँ रागभाव की अत्यन्त क्षीणता होती है, वीतरागभाव पुष्ट होता है, स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है, श्रेणी माँडने से शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। श्रेणी के दो भेद हैं, एक क्षपक, दूसरी उपशम, क्षपकक्षेणीवाले तो उसी भव से केवलज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं, और उपशमवाले आठवें, नवमे दशवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर पीछे पड़ जाते हैं, सो कुछ–एक भव भी धारण करते हैं, तथा क्षपकवाले आठवें से नवमें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं, वहाँ कषायों का सर्वथा नाश होता है, एक संज्वलनलोभ रह जाता है, अन्य सबका अभाव होने से वीतरागभाव अति प्रबल हो जाता है, इसलिये स्वसंवेदनज्ञान का बहुत ज्यादा प्रकाश होता है, परन्तु एक संज्वलनलोभ बाकी रहने से

वहाँ सरागचरित्र ही कहा जाता है। दशवें गुणस्थान में सूक्ष्मलोभ भी नहीं रहता, तब मोह की अट्ठाईस प्रकृतियों के नष्ट हो जाने से वीतरागचारित्र की सिद्धि हो जाती है। दशवें से बारहवें में जाते हैं, ग्यारहवें गुणस्थान का स्पर्श नहीं करते, वहाँ निर्मोह वीतरागी के शुक्लध्यान का दूसरा पाया (भेद) प्रगट होता है, यथाख्यातचारित्र हो जाता है। बारहवें के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इन तीनों का विनाश कर डाला, मोह का नाश पहले ही हो चुका था, तब चारों घातिकर्मों के नष्ट हो जाने से तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान प्रगट होता है, वहाँ पर ही शुद्ध परमात्मा होता है, अर्थात् उसके ज्ञान का पूर्ण प्रकाश हो जाता है, निःकषाय है। वह चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक तो अन्तरात्मा है, उसके गुणस्थान प्रति चढ़ती हुई शुद्धता है, और पूर्ण शुद्धता परमात्मा के है, यह सारांश समझना।।१२।।

गाथा - १२ पर प्रवचन

आगे तीन प्रकार आत्मा को जानकर... अब बारहवीं गाथा। **बहिरात्मपना छोड़ स्वसंवेदन ज्ञानकर, तू परमात्मा का ध्यान कर, इसे कहते हैं—**

१२) अप्पा ति-विहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ।
मुणि सण्णाणें णाणमउ जो परमप्प-सहाउ।।१२।।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकर भट्ट! तू आत्मा को तीन प्रकार का जानकर... 'मूढं भावम् लघु मुञ्च' बहिरात्मस्वरूप भाव को शीघ्र ही छोड़,... यह पुण्य और पाप को अपना मानना, वह राग के विकल्पों को अपना मानना, वह बहिरात्मबुद्धि, मिथ्याबुद्धि, मूढबुद्धि है। शरीर, वाणी तो कहीं रह गये। खबर नहीं यहाँ से कहाँ जाना? कोई साथ में आवे, ऐसा है?

होगा कौन जाने किसे होता हो तो। कौवे आदि को श्राद्ध डाले, ऐसे को होता होगा? परभव में इस सब सामग्री का कुछ उपकार (होता है या नहीं?) इस भव में तो कुछ नहीं, पर वस्तु है, इसलिए कुछ उपकार नहीं होता। परन्तु इसके लिये मर गया, मरकर प्रयास करता है। लड़के लिये, स्त्री के लिये, शरीर के लिये, मकान के लिये,

इज्जत के लिये मरकर प्रयास करता है। खबर है कि हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। जाना है बड़े काल में अन्यत्र। यहाँ तो थोड़ा काल (रहना है)। अब इस सामग्री की सम्हाल में इसे यह सामग्री एक समय भी साथ में आनेवाली नहीं है। बराबर होगा? एक समय साथ में आयेगी? परन्तु...

मुमुक्षु : काम में....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे? धूल में काम आती है? दुःख के लिये निमित्त होने में काम आती है। दुःख के लिये निमित्त होने में काम आती है।

मुमुक्षु : अल्प ही है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्प नहीं, सब, सब दुःख ही है। अल्प को और कहाँ? फिर महेन्द्रभाई जैसा लड़का हो तो उसके पिताजी कहे, थोड़ा दुःख है न इतना तो? थोड़ा तो सुख है न इसमें? कहो, आज्ञाकारी लड़के मिले ऐसे। पिताजी को यहाँ पचास हजार का मकान बना दे। रहो, निश्चिन्तता से रहो। अब तुम्हारे कुछ करने का नहीं है, जाओ। इतना तो सुख है या नहीं? नहीं? ले, यह इनकार करता है। ऐई! सेठी! सेठी भी इनकार करता है। वह दुःख ही है।

मुमुक्षु : सुख नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख नहीं और दुःख, दोनों में अन्तर होगा? आहाहा!

एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग भी जिसके समीप में उसके क्षेत्र में यह चीज़ आयी नहीं। आयी है? एक समयमात्र यह शरीर आत्मा की पर्याय में आया है? एक समय। और एक समयमात्र यहाँ से निकलते साथ में एक समयमात्र आयेगा? यह तो पर मिट्टी, धूल, परवस्तु और जगत के पदार्थ हैं। आहाहा! परन्तु इसके लिये आत्मा को खोकर भी उन्हें अच्छे रखूँ। आत्मा को गलाकर भी उन्हें जीवित, टिकते रखूँ। आत्मा को पिघलाकर भी उन्हें टिकते रखूँ। मिथ्याश्रद्धा से इसकी... ऐसे रहो, इसका ... ऐसा रहो और इसका ... ऐसा रहो। मर गया उसकी भावना में। मोहनभाई! अरे! क्या होगा यह वह? और एक समयमात्र जहाँ छूटा। खबर नहीं इसे कि यहाँ कितना रहना है? जितने वर्ष, कितनों को पचास के ऊपर निकले, उन्हें इतना रहना है? एक बात है।

दृष्टान्त। यह सेठ को तो ८० हो गये। शरीर को, हों! सेठ को अर्थात् आत्मा को नहीं। आहाहा! कहाँ का तू, कहाँ का यह पिंजर? यह शरीर ही जड़, मिट्टी, धूल के पदार्थ है। तू कहाँ है इसमें? इसकी सम्हाल करना, यह कहीं सम्हालने से रहे ऐसा है? आहाहा! साथ में तो आता नहीं, ममता छूटती नहीं। साथ में आता नहीं, ममता छूटती नहीं। छोड़े बिना रहना नहीं अब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। होता है, ऐसा मानता है कि इसे अच्छा रखूँ। इसके लिये दुःख में रहता है। अच्छा रखने से रहता नहीं, इसलिए दुःख मानता है। यह मूढ़ता है, ऐसा कहते हैं। अच्छे-बुरे की व्याख्या क्या? वे तो परपदार्थ हैं। तेरी कोई कल्पना से वह रहे ऐसा है? और कल्पना लाख रखे, छूटने के काल में छूटे बिना रहे, ऐसा है? अभी छूटा ही पड़ा हुआ है। कहाँ घुस गया है आत्मा में वह? आहाहा! परन्तु मूढ़ अपना आत्मा...

यहाँ बहिरात्मा की व्याख्या चलती है। बहिर जितनी वस्तु है, वह उसकी नहीं, उसमें रहती नहीं, वह रखने से रहती नहीं, तो भी उसे अपना मानकर, अपने आत्मा की शान्ति, स्वभाव, अनादर खोकर उसे रखने को मिथ्या प्रयास करता है। वह तीन काल में इसके होते नहीं और कभी हुए नहीं। ऐसी मान्यतावाले कहे, मेरे इन्हें रखूँ। यह बहिरात्मा मूढ़ कहलाता है। '**मूढउ**' यहाँ शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! समझ में आया?

किसी प्रकार से जगत में मुझे कोई अच्छा कहे और बुरे की छाप है, वह जाये। इसके लिये विकल्प से प्रयत्न करता है। इसका अर्थ ही (यह कि) वह पर को ही अपना मानता है। आहाहा! वह बहिरात्मा पर को ही अपना मानता है। क्योंकि पर जो है, वह मुझे ठीक कहे न तो मुझे ठीक है। इसलिए वह पर को ही अपना मानता है। दूसरे मुझे ठीक कहें... आहाहा! गजब! बस, प्रसन्न... प्रसन्न। और वह अच्छा व्यक्ति कहलाये। तो उसे अच्छा व्यक्ति कहा जाये।

मुमुक्षु : वह अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसे ठीक कहा न, इसलिए वह अच्छा।

बात तो यह है। अरे! तुझे दुनिया जो परपदार्थ, उसकी पर्याय वह तुझे ठीक कहे, तो तुझे अच्छा-ठीक लगे और वे अच्छा न कहे तो ठीक न लगे। उसने पर को ही अपना माना है। समझ में आया? बहिरात्मबुद्धि, मूढबुद्धि है। आहाहा! बराबर होगा?

कहते हैं, **बहिरात्मस्वरूप भाव को...** हों! भाव का। है न? पाठ है न? '**मूढं भावम्**' ऐसा है। परवस्तु नहीं, परवस्तु मेरी है, उसे रखूँ, उसकी रक्षा करूँ और मुझे प्रतिकूल हो तो उसे दूर करूँ, ऐसा जो पर को (अपना मानता है), उसका अर्थ कि मैं दूर करूँ और रखूँ, इसका अर्थ ही पर को अपना माना कहलाता है। पर को अपना माना है कि इसे दूर करूँ और इकट्ठा करूँ, ऐसा उसने माना है। समझ में आया? आहाहा!

अन्तरात्मा भगवान ज्ञानमय कहेंगे, देखो! यह पाठ में। '**स्वज्ञानेन ज्ञानमयं जान मन्यस्व...**' भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु में इस परचीज़ का तीनों काल अभाव है। तथापि उसे रखने को प्रयत्न करना और उसे ठीक पड़े, मेरा तो वह ठीक मुझे, ऐसा उसने पर को ही उसने माना है। और मेरी यह निन्दा करे न, उसके अस्तित्व को मैं उखाड़ डालूँ तो मुझे ठीक पड़े। इसका अर्थ ही यह है कि वह पर को ही अपना मानता है। समझ में आया?

यह बहिर् अर्थात् भगवान अन्तर्मुख चिदानन्दमूर्ति, ऐसा जिसे अपना ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान नहीं। स्वसंवेदनज्ञान, ज्ञानमय का स्वसंवेदनज्ञान। मैं तो ज्ञान आत्मा चैतन्य हूँ। पर्याय में विकास भले परमात्मा का न हो, परन्तु मैं स्वसंवेदन ज्ञान से, ज्ञानस्वरूप से वह मैं हूँ; दूसरी कोई चीज़ को फेरफार करना मैं चाहूँ तो मेरी कल्पना से उस चीज़ में फेरफार होता नहीं है। क्योंकि यह ज्ञान है, यह ज्ञान है। यह तो होता है, उससे जाननेवाला है। समझ में आया? होता है, उसे बदलनेवाला है—ऐसा नहीं है। बदल डाल तेरे भाव में से, बदल डाल तेरे भाव में से। क्या करना है तुझे? आहाहा! यह तीर्थंकरों ने बहिरात्मा का स्वरूप ऐसा वर्णन किया। ऐसा आचार्य कहते हैं कि मैं तेरे पास वर्णन करता हूँ। आहाहा! पाठ में क्या लिया?

'**लहु मूढउ मेल्लहि भाई...**' शीघ्ररूप से मूढात्मा को मैल ऐसे भाव को। समझ में आया? बाहर की सुविधा से मुझे ठीक है और असुविधा से अठीक, उसने पर को

ही अपना माना है। उसकी बुद्धि, बहिर्बुद्धि, बाह्य बुद्धि है। समझ में आया? यह नाम शरीर का, उसकी प्रसिद्धि से मुझे प्रसिद्धि (है, ऐसा माननेवाले) वह बहिरात्मा मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। शरीर के नाम की कोई निन्दा आदि करे और उसे ऐसा हो कि यह मेरी निन्दा करता है, उसका अर्थ कि शरीर के नाम से जो करे वह मुझे करता है। अर्थात् वह शरीर को ही अपना माना। आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह कचरा निकालना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कचरा निकालने के लिये तो यह बात चलती है। आहाहा! ऐसे तो ग्यारह अंग और नौ पूर्व सीख गया। पढ़-पढ़कर रट गया। समझ में आया? और मुझे आया, ऐसा भी उसने मान लिया। अपने को सब आता है अब। हम तो बहुत सीख गये हैं, बहुत वर्ष से सीख गये हैं।

उसे ख्याल में है सब। ख्याल में है कि इस वस्तु में फेरफार हो तो मुझे ठीक पड़े और इसमें न हो तो मुझे ठीक न पड़े, यह ख्याल में है। समझ में आया? छोड़ बहिरात्मबुद्धि और परमात्मस्वभाव, अपना परमस्वभाव, परमस्वरूप स्वभाव अकेला ज्ञानमय प्रभु ज्ञानमय (उसे ग्रहण कर), ज्ञान (कहने से) शास्त्र का ज्ञान नहीं, यह ज्ञान नहीं। यह आत्मा जो ज्ञानमय वस्तु है, उसका '**स्वज्ञानेन**' देखो! स्वज्ञान में स्वसंवेदन का विस्तार करेंगे। यह '**स्वज्ञानेन**' है न? इसका विस्तार करेंगे।

स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ... देखो! चौथे से बारह तक की यह व्याख्या। '**स्वज्ञानेन**' वह मिथ्यात्व की व्याख्या बहिरात्मा की और यह चौथे से बारहवें तक। समझ में आया? इसमें से निकालेंगे यह। पाठ इतना है। '**अन्तरात्मलक्षणवीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन।**' पाठ में '**स्वज्ञानेन**' है। टीका में '**अन्तरात्मलक्षणवीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन।**' यह वस्तु। वे कहे, नये शास्त्र बनाये। भाई! शास्त्र बनाये नहीं। यह तो शास्त्र में है, इस बात का विस्तार किया। नये शास्त्र किसलिये बनाये? पहले थे वे रखने थे न! लो! और एक ऐसा कहता है। कौन बनावे? बापू! कार्य कौन करे? उसके परमाणु की पर्याय में से जो विस्तार आनेवाला हो, वह आता है, होता है। उसमें नये शास्त्र कहाँ? नयी वाणी (कहाँ)? वाणी तो जो है वह है। कौन वाणी करे

और कौन निकाल और कौन बोले? आहाहा! समझ में आया? वाणी मैं धीरे से कहूँ तो मैं कर सकता हूँ, जोर से करूँ तो कर सकता हूँ, उग्ररूप से जोर देकर करूँ और धीमे से (करूँ), सब कर सकता हूँ। यह मान्यता ही बहिरात्मा मूढ़ की है। आहाहा! भगवान के पास तो अकेला ज्ञान है। उसके पास इसका ऐसा करना, ऐसा उसके पास है? उसके द्रव्य-गुण में नहीं और पर्याय में भी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, वह **स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ... 'मन्यस्व' जान।** क्या जान? **वह स्वभाव केवलज्ञानकर परिपूर्ण है।** अकेला ज्ञान शान्तरस, अकषायी ज्ञान वीतराग विकल्प रहित, बोलने की भाषा की तो गन्ध भी नहीं उसमें, परन्तु विकल्प करूँ, ऐसा नहीं करूँ, यह वस्तु में नहीं है। ऐसा अकेला ज्ञानमय अकषाय, विकाररहित, वीतरागस्वरूप, ज्ञानस्वरूप को प्राप्त कर, उसका साधन कर। बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा का साधन कर। समझ में आया? अरे! परन्तु इसमें किसका काम है? समझ में आया? कि यह दुनिया प्रसन्न हो या प्रसन्न न हो। अब दुनिया प्रसन्न-अप्रसन्न परद्रव्य है। इसकी पर्याय के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है?

मुमुक्षु : दुनिया कभी प्रसन्न हो, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु प्रसन्न हो तो उसकी पर्याय में। उसकी पर्याय में ऐसा परिणमन (होता है), उसमें तुझे क्या? तेरे परिणमन को क्या लाभ उसमें? और प्रतिकूलता के परिणमन की वाणी जगत में हो, उसमें तेरी पर्याय को नुकसान क्या? आहाहा! समझ में आया?

इसलिए कहा कि, '**स्वज्ञानेन**'। '**स्वज्ञानेन**' शब्द प्रयोग किया है, इसमें से इतना (निकाला कि) स्वसंवेदन अर्थात् आत्मा के ज्ञान द्वारा, केवलज्ञानकर परिपूर्ण उसे जान। पूरा आत्मा परिपूर्ण है, उसे जान और जानकर परमात्मा पूर्ण प्रगट करने का साधन अन्तरात्मपना प्रगट कर। आहाहा!

अनन्त काल में मुश्किल से मनुष्य हुआ। उसमें मुश्किल से इसे मनुष्यपने में संज्ञीपना मिला। उसमें कुछ इन्द्रियाँ (व्यवस्थित मिली)। उसमें से भागकर निकलने का काल इसे (मिला है), वहाँ चिपककर पड़ा उसमें ठीक से। समझ में आया? उसमें

से छूटकर निकलने का अवसर (आया)। उसमें से छूटना नहीं, उसे ही पकड़कर रखना है और उसे ही रखना है। ओहोहो! विपरीतता वह भी कुछ (कम नहीं है)। बहिरात्मबुद्धि—बाहर को रखना, छोड़ना, प्रसन्न-खुशी करना। कहते हैं कि भाई! यह मूढ़भाव छोड़ और ज्ञानमय भगवान जानने का देखने का स्वभाव तेरा है। बोलना भी कहाँ और विकल्प भी वहाँ कहाँ है? समझ में आया? ऐसी आत्मा की चीज़ को तू जान और वह तो अकेला ज्ञानमय भगवान है। समझ में आया? उसमें बोलने का, हिलने का, दूसरे को प्रसन्न (करने का), दूसरे से प्रसन्न होने का, कोई स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

जो वीतराग स्वसंवेदनकर परमात्मा जाना था, वही ध्यान करनेयोग्य है। क्या कहा? अन्तरात्मा की बात की। भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का (पुंज), ज्ञान जिसका रूप और स्वरूप है। शरीर जिसका रूप और स्वरूप, जिसमें तीन काल में नहीं है, वाणी का रूप और स्वरूप जिसमें नहीं है, पुण्य-पाप के विकल्पों के जवाब देने में यह विकल्प हो तो ऐसे दूँ, ऐसा विकल्प का स्वरूप और रूप जिसके स्वरूप में नहीं। वह तो कैसा है? वीतराग संवेदन परमात्मा है। वह ज्ञानमय भगवान, उसे रागरहित चैतन्य के भान द्वारा जाना था, वही ध्यान करने के योग्य है। उसमें बारम्बार एकाग्र होने योग्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया था, जो स्वसंवेदन अर्थात् अपनेकर अपने को अनुभवना... महाराज! आपने ऐसा कहा—अपनेकर अपने को—अपने से अपने को अनुभव करना। **इसमें वीतराग विशेषण क्यों कहा?** अपना जानना, इसमें वीतराग का विशेषण (लगाकर) वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान क्यों कहा? मात्र स्वसंवेदन कहना था। वीतराग स्वसंवेदन क्यों कहा? आत्मा भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु, पुरुषाकार परमात्मा का स्वरूप स्वयं है, उसे अपने वीतरागी ज्ञान द्वारा जानना। आपने वीतराग शब्द बीच में क्यों डाला? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया है। **क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह रागरहित होवेगा ही।** शिष्य का प्रश्न है। इसका विशेष समाधान करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)